भारत में जनहित याचिकाएँ : एक समीक्षात्मक अध्ययन

प्रियंका विश्वकर्मा*

सारांश

न्याय व्यवस्था का कार्य सभी लोगों को समान रूप से जीवन जीने की परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना है, ताकि कोई भी व्यक्ति स्वयं को समाज से कटा हुआ एवं निम्न स्थिति में महसूस न करे। लेकिन विभिन्न विधिक प्रावधानों के बावजूद भी सभी वर्गों को समान रूप से न्याय उपलब्ध होना एक प्रमुख समस्या है। इसके पीछे कुछ बुनियादी कारण जैसे लोगों का शिक्षित न होना, निर्धन होना आदि शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त न्यायिक प्रक्रिया भी इतनी जटिल और खर्चीली है कि यह आम नागरिकों की समझ से बाहर होती है। इन सभी समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए और न्याय के सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप देने के लिए जनहित याचिकाओं के रूप में न्याय के परंपरागत सिद्धान्त का विस्तार किया गया।

पाश्चात्य विकासशील देशों के विपरीत भारत में इस व्यवस्था को अधिक सकारात्मक रूप में ग्रहण किया जा रहा है। अपने उदय से लेकर वर्तमान तक जनहित याचिकाओं की प्रासंगिकता की अनदेखी नहीं की जा सकती। सामान्य तौर पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय एवं अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को जनहित याचिकाओं की सुनवाई का अधिकार प्राप्त है, क्योंकि वे देश की न्याय व्यवस्था की सर्वोच्च अधिकारिक शक्ति का प्रयोग करते हैं। लेकिन सी0पी0सी0 की धारा 133 अधीनस्थ न्यायालयों (मजिस्ट्रेट कोर्ट) को भी जनहित याचिकाओं पर सुनवाई का अधिकार प्रदान करती है। अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित व्यवस्था को किसी अन्य विधि के अन्तर्गत परिभाषित नहीं किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जनहित याचिकाओं की एक रूपरेखा प्रस्तुत करना है ताकि जो व्यक्ति इस प्रकार के त्वरित एवं सुलभ न्याय की व्यवस्था से अनभिज्ञ है उनके संज्ञान में यह विषय आये। यह शोध पत्र उन अध्येताओं एवं शोधार्थियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगा जो इस विषय को समझना चाहते हैं लेकिन पाठ्य सामग्री के बिखराव के कारण असमंजस की स्थिति में हैं।

संकेत शब्द : विधिक प्रावधान, न्यायिक प्रक्रिया, आम नागरिक, परम्परागत सिद्धान्त, आधिकारिक शक्ति, सी0पी0सी0, अधीनस्थ न्यायालय।

प्रस्तावना

''अदालत के लिये यह आवश्यक है कि वह लोगों के उस विशाल जनपुन्ज तक न्याय के मार्ग को प्रशस्त करने हेतु नित नये तरीकों एवं योजनाओं की खोज करे, जो मूलभूत मानव अधिकारों से भी वंचित हैं, जिनके लिये आजादी एवं स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं है।''

—पी0एन0 भगवती

भारत के सर्वोच्च न्यायालय को चार प्रकार की न्यायिक अधिकारिताऐं प्राप्त हैं – i. आरंभिक ii. अपीलीय iii. रिट अधिकारिता और iv. विशिष्ट अवकाश याचिका (एसएलपी)। लोगों द्वारा न्यायालय में प्रतिदिन दायर की जाने वाली अधिकांश सामान्य याचिकाएँ नागरिक एवं आपराधिक मामलों से सम्बन्धित होती हैं। ये याचिकाएँ याचिकाकर्त्ताओं के व्यक्तिगत हितों से सम्बन्धित होती हैं और इनकी प्रक्रिया अत्यन्त लंबी, जटिल और खर्चीली होती है।

दूसरी तरफ न्यायालयों को कुछ रिट अधिकारिताएं भी प्रदान की गयी हैं। संविधान के अनुच्छेद 32 के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन होता है तो वह अपने अधिकारों के संरक्षण हेतु उच्चतम न्यायालय की शरण में जा सकता है। इस सम्बन्ध में नागरिक को अधिकार है कि वह बिना अपील याचिका के सीधे उच्चतम न्यायालय से संरक्षण प्राप्त करे। इसी तरह विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट अधिकारिताएं प्रदान की गयी हैं।

1970 के दशक में भारतीय न्यायालयों की रिट अधिकारिता के क्षेत्र में 'जनहित याचिका' के नाम से एक नये

---

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, नैनीताल

अध्याय की शुरूआत हुई। जनहित याचिकाओं की संकल्पना 'सार्वजनिक न्याय' से सम्बन्धित है। जनहित याचिकाएं विशिष्ट प्रकार की याचिकाएं हैं जिन्हें कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक मामले में न्याय प्राप्त करने के लिये दायर कर सकता है। जनहित याचिकाओं का आशय है जिस वर्ग अथवा व्यक्ति समूह के लिये याचिका दायर की गयी है उस व्यक्ति समूह का हित न कि यचिकाकर्त्ता का हित। जनहित याचिकाओं की संकल्पना को प्रकाश में लाने का प्रमुख कारण था समाज के उन वंचित वर्गों तक न्याय की पहुँच को संभव बनाना जो न्यायालय की जटिल प्रक्रिया को समझने, उसका सामना करने में सक्षम नहीं हैं।

संयुक्त कार्य समिति बनाम योजना एवं विकास प्राधिकारी, 1998 मामले में जनहित याचिकाओं को परिभाषित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जनहित याचिका समुचित वादों में उचित ढंग से न्याय प्रदान करने के लिये महत्त्वपूर्ण औजार का कार्य करती है। निजी पक्षकारों के मध्य विवादों का निपटारा जनहित याचिका का अभिप्राय नहीं है। यदि किसी समूह अथवा वर्ग कार्यवाही द्वारा मौलिक अधिकारों के अतिक्रमण अथवा ऐसे कृत्यों के विरूद्ध जो न्याय की अन्तरात्मा को आघात पहुँचाती हैं, न्यायालय में शिकायत की जाती है तो ऐसे समय में न्यायालय को चाहिए कि वह प्रक्रिया सम्बन्धी औपचारिकताओं को पृथक कर दे और मोहताजों, असहायों और तिरस्कृत व्यक्तियों की, लोक व्यथा के प्रतिकर के नाम पर, विपत्तियों अथवा कष्टों के निवारण के लिये ऐसी जनहित याचिका पर सुनवाई करे।

इस तरह जनहित याचिकाएँ स्पष्ट रूप से परिभाषित न होते हुए भी भारतीय संविधान एवं न्याय व्यवस्था का एक विशिष्ट अंग हैं। कोई भी न्यायालय जनहित याचिकाओं को सामान्य याचिकाओं के मुकाबले कमतर नहीं आंक सकता।

शोध पद्धति

भोध दृष्टिकोण – प्रस्तुत शोध अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है।

शोध पद्धति – विश्लेषणात्मक पद्धति : शोध पत्र विश्लेषणात्मक पद्धति के आधार पर निर्मित किया गया है। शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जनहित याचिकाओं की एक संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत करना है। शोध पत्र के अन्तर्गत जनहित याचिकाएं क्या हैं, उनका विकास क्रम, वैधानिक प्रावधान, उनकी प्रासंगिकता आदि का विश्लेषण किया गया है। शोध अध्ययन के माध्यम से जनहित याचिकाओं की संकल्पना को समझने में सहायता मिलेगी।

आधार सामग्री – द्वितीयक स्रोत : चूँकि शोध अध्ययन का उद्देश्य जनहित याचिकाओं का एक विश्लेषणात्मक समीक्षा प्रस्तुत करना है, अतः विषय की प्रकृति द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। जनहित याचिकाओं के विश्लेषण हेतु प्रकाशित, अप्रकाशित पाठ्य सामग्री को उपयोग में लाया गया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. जनहित याचिकाओं की संकल्पना की संक्षिप्त व्याख्या करना।
2. जनहित याचिकाओं से संबंधित संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों, उनके विकासक्रम आदि का अध्ययन करना।
3. जनहित याचिकाओं के बारे में एक सामान्य समझ विकसित करना।

उद्भव एवं विकास

भारत में जनहित याचिकाओं की संकल्पना अपेक्षाकृत नया विषय है। इस सम्बन्ध में भारत अमेरिका से प्रेरित है। अमेरिका में औपचारिक रुप से 1960 के दशक में जनहित की अवधारणा की शुरुआत हुई, जिसे वहाँ की कानूनी भाषा में 'जनहित कानून' के नाम से जाना जाता है। लुईस डेम्बिट्ज ब्रेन्डिस जो अमेरिका के प्रसिद्ध वकील और बाद में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे, ने 1905 के अपने प्रख्यात भाषण वकीलों, गैर सरकारी संगठनों, विधिक विद्यालयों एवं अन्य संस्थानों को जनहित के क्षेत्र के कार्य करने के लिये प्रेरित किया।

विभिन्न समालोचकों के अनुसार ऑलीवर ब्राउन बनाम शिक्षा परिषद्, 1954 मामले से संयुक्त राज्य अमेरिका में जनहित कानून का उदय हुआ। इस मामले में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में नस्लीय आधार पर श्वेत और अश्वेत लोगों के लिये पृथक–पृथक निजी विद्यालयों की स्थापना को असंवैधानिक करार दिया। यह मामला कई तरह से जनहित के मुद्दों को उठाता है।

इसके उपरान्त फोर्ड फाउन्डेशन, जिसकी स्थापना वर्ष 1936 में मानव कल्याण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से की

गयी थी, ने जनहित कानून से संबंधित एक समिति की स्थापना की। 1976 में समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने अपनी रिपोर्ट में जनहित कानून को परिभाषित करते हुए कहा कि ''जनहित कानून उस विधि का नाम है जिसके द्वारा हाल ही में पूर्ववर्ती अप्रतिनिधिक वर्गो और हितों को विधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इन वर्गों और हितों में गरीब, पर्यावरणविद्, जातीय एवं नस्लीय अल्पसंख्यक और अन्य लोग शामिल हैं।''

1950 के दशक में फोर्ड फाउंडेशन ने अमेरिका की विधि संबंधी परियोजनाओं के लिये निधिकरण का कार्यक्रम शुरु किया। बाद में इसका विस्तार लैटिन अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका के देशों में भी किया गया। वर्ष 2000 में प्रवेश करते हुए फाउंडेशन इसके न्यूयार्क हेडक्वार्टर के जरिये 25 देशों और दुनियाभर में 11 विदेशी कार्यालयों में माध्यम से जनहित कानून समूहों के लिये अनुदान उपलब्ध करवाने के कार्य में जुटा हुआ था।

अमेरिका में जनहित कानून को संस्थागत किया गया है। गैर–सरकारी संस्थाएँ अमेरिकी विधिक व्यवस्था के अनुसार लोगों के अधिकारों को संरक्षित करने एवं बढ़ावा देने का काम करती हैं। ये संस्थाएँ स्वयं को 'जनहित कानून संस्थाओं' के रुप में परिभाषित करती हैं। देश के विभिन्न विधिक संस्थानों ने इसके विभिन्न आयामों को प्रकाश में लाने का कार्य किया है। क्लीनिकल लीगल एजूकेशन (सीएलई) जिसकी शुरुआत अमेरिका में सामाजिक न्याय की कार्यवाही सुनिश्चित करने और गरीबों के हितों के लिये विधिक सहायता के अभाव के प्रतिक्रियास्वरूप हुई थी, कानूनी शिक्षा के अभ्यर्थियों को अवसर प्रदान करता है कि वे सामान्य और पेचीदा हर प्रकार के जनहित मुद्दों पर व्यवहारिक कार्य करें। कुछ विधिक विद्यालयों के 'जनहित कानून केन्द्र' भी हैं जो कानूनी शिक्षा के अभ्यर्थियों को जनहित को अपने व्यवसाय के रुप में अपनाने के लिये प्रेरित करते हैं। बार एसोसिएशन में प्रो. बोनो प्रोग्राम और विधिक फर्में व्यवसायिक वकीलों को जनहित संबंधी कानूनी गतिविधियों के लिये समय निकालने का अवसर प्रदान करते हैं।

देश के वकीलों ने भी इस व्यवस्था को मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्होंने 'जनहित वकीलों' के रुप में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। वकीलों का एक बड़ा समुदाय आर्थिक रुप से अक्षम लोगों को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करने के उद्‌देश्य से प्रशिक्षण प्राप्त करता है। ये विधिक व्यवसायी समाज के उन ताजा और ज्वलंत मुद्‌दों को उठाते हैं जो जनहित को लेकर सबसे ज्यादा वाद–विवाद का विषय बने हुये हैं। इस व्यवस्था का एक दूसरा पहलू यह भी है कि इन वकीलों पर काम का अतिरिक्त बोझ बहुत अधिक बढ़ जाता है और इसके बदले कोई वेतन भी नहीं दिया जाता।

दुनिया के विभिन्न देशों में जनहित कानून का विकास अलग अलग रुप में हुआ है। प्रत्येक देश ने अपनी सामाजिक एवं न्यायिक परिस्थितियों के अनुसार इस व्यवस्था को अपनाने का प्रयास किया है। भारत के संविधान के किसी भी भाग या अनुच्छेद में जनहित याचिकाओं को स्पष्ट रुप से परिभाषित नहीं किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की टिप्पणियों एवं निर्णयों के द्वारा इनके उद्‌देश्यों की व्याख्या की गयी है।

भारत में जनहित याचिकाओं की शुरुआत आपातकाल (1975–77) के प्रतिक्रियास्वरुप हुई। हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य, 1979 मामले में एक वकील श्रीमती पुष्पा कपिला हिंगोरानी द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में देश का पहला जनहित वाद दायर किया गया। यह याचिका बिहार जेल में बन्द कैदियों से सम्बन्धित थी जिनके मुकदमें अदालत में लंबे समय से लंबित पड़े थे। इस मामले ने आपातकाल के दौरान भारत के विभिन्न जेलों में अमानवीय दशा झेल रहे कैदियों की ओर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। न्यायमूर्ति पी0एन0 भगवती की अध्यक्षता वाली पीठ ने कैदियों को निःशुल्क विधिक सहायता और मामले की त्वरित सुनवाई के निर्देश दिये। इस जनहित याचिका के कारण देश में विभिन्न जेलों में बन्द 40000 कैदी जिनके मुकदमें लंबित पड़े थे मुक्त कर दिये गए।

इसके बाद जनहित से संबंधित अनगिनत मामले सर्वोच्च न्यायालय में दायर किये गए। एस0पी0 गुप्ता बनाम भारत संघ, 1981 मामले में न्यायालय ने जनहित याचिका शब्दावली को भारत के सन्दर्भ में स्पष्ट किया। आपातकाल के बाद देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों में भी जनहित याचिकाओं का विकास तेजी से हुआ।

भारत में जनहित याचिकाओं को 'सामाजिक कार्यवाही याचिका', 'वर्ग याचिका' आदि अनेक नामों से जाना जाता है। गरीब, अशिक्षित व्यक्ति जो न्यायालय जाने में सक्षम नहीं है साधारण पत्र अथवा पोस्ट कार्ड के माध्यम से याचिका दायर कर सकता है। इसलिये इसे 'पोस्टकार्ड न्याय' के नाम से भी जाना जाता है। पोस्टकार्ड न्याय को लोकप्रिय बनाने में न्यायमूर्ति पी0एन0 भगवती का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने प्रक्रियागत औपचारिकताओं को विशेष महत्त्व न देकर जनता अथवा व्यक्ति से प्राप्त साधारण पत्रों को रिट याचिकाओं के समकक्ष मान्यता प्रदान की।

बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ, 1983 मामलें में सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा के फरीदाबाद जिले के पत्थरों की खान खोदने वाले बन्धुआ मजदूरों की याचिका को एक साधारण पत्र के रुप में स्वीकार किया और जाँच के लिये दो सदस्यीय समिति का गठन किया। इसी तरह परमानन्द कटारा बनाम भारत संघ, 1989 मामले में अदालत ने समाचार पत्र में

विज्ञापन के माध्यम से दायर याचिका स्वीकार की। यह याचिका एक मानव अधिकार कार्यकर्त्ता द्वारा अस्पताल में कार्यरत् उन चिकित्सकों के खिलाफ दायर की गयी थी, जिन्होंने एक कार दुर्घटना में घायल मरणासन्न व्यक्ति को अस्पताल में भर्ती करने से साफ इंकार कर दिया था। मामले में सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि किसी भी अन्य कर्त्तव्य के अलावा किसी चिकित्सक के लिये व्यक्ति के जीवन को बचाने का कर्त्तव्य सर्वोपरि है, घायल व्यक्ति को तुरन्त चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध कराई जाए।

इस तरह पिछले कुछ दशकों में जनहित याचिकाएँ भारत में न्यायिक सक्रियता का एक विशिष्ट माध्यम बनी हैं। भारत इस सम्बन्ध में पश्चिमी देशों से प्रेरित अवश्य है परन्तु, भारत की सामाजिक परिस्थितियों में उन देशों की तुलना में विशेष अन्तर है, इसलिये न्यायिक प्रक्रिया के क्रियान्वयन में अन्तर होना स्वाभाविक है।

जनहित याचिका के विषय

संयुक्त कार्य समिति बनाम योजना एवं विकास प्राधिकारी, 1998 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित याचिका दायर करने की स्थितियों एवं शर्तों की व्याख्या करते हुए कहा कि लोक समर्थित व्यक्ति अथवा कार्य समूह द्वारा रिट याचिका को ऐसे व्यक्ति के संविधान प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है जो निम्न कारणों से उसे प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं –

i. वह अभिरक्षा में है,
ii. वह ऐसे वर्ग अथवा व्यक्ति समूह से सम्बन्ध रखता है जो निर्धनता, निर्योग्यता अथवा अन्य किसी सामाजिक अथवा आर्थिक बाधाओं के कारण अपने विधिक अधिकारों का प्रवर्तन कराने के लिये असमर्थ हैं।

जनहित याचिकाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इन्हें कुछ विषयों के अन्तर्गत सीमित करना एक कठिन कार्य है। जनहित से सम्बन्धित लगभग सभी मामले जनहित याचिकाओं का विषय बनने की सक्षमता रखते हैं, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वर्ष 1988 में जारी किये निर्देशों के अनुसार कुछ प्रमुख क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है जिनके अन्तर्गत कोई व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह किसी साधारण पत्र को जनहित याचिका के रुप में दायर कर सकता है। इन विषयों को दो भागों में बाँटा गया है –

i. सामान्य जनता से सम्बन्धित मामले।
ii. निजी प्रकृति के मामले जिन्हें जनहित याचिकाओं के माध्यम से नहीं लाया जा सकता।

सामान्य जनता से सम्बन्धित मामलों के अन्तर्गत प्रमुख 10 क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है –

1. बन्धुआ मजदूरों से सम्बन्धित मामले।
2. उपेक्षित बालक।
3. न्यूनतम वेतन की गैर–अदायगी और अस्थायी कामगारों का शोषण तथा श्रम कानूनों के उल्लंघन की शिकायत से सम्बन्धित मामले।
4. शोषण की शिकायत के लिये जेल से याचिका, निर्धारित समय से पूर्व रिहाई अथवा 14 वर्ष जेल में बिताने के बाद भी रिहाई पर रोक, जेल में मृत्यु, स्थानान्तरण, व्यक्तिगत अनुबन्ध पर रिहाई, मौलिक अधिकारों की त्वरित सुनवाई से सम्बन्धित मामले।
5. शिकायत दर्ज न करने अथवा मामले की अनदेखी करने की स्थिति में पुलिस के खिलाफ याचिका, पुलिस के द्वारा शोषण अथवा पुलिस संरक्षण में मृत्यु।
6. वधु के व्यक्तिगत शोषण, वधु को जलाने, उसके साथ बलात्कार, हत्या अपहरण इत्यादि जैसी महिलाओं पर नृशंसता के खिलाफ याचिका।
7. ग्रामीण का अन्य ग्रामीणों द्वारा मानसिक उत्पीड़न अथवा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य आर्थिक रुप से पिछड़े वर्गों से संबंधित लोगों का पुलिस द्वारा शोषण।
8. पर्यावरण प्रदूषण, पारिस्थितिकीय असन्तुलन, नशीले पदार्थ, खाद्य पदार्थों में मिलावट, पारंपरिक संस्कृति एवं धरोहरों का अनुरक्षण, पुरातन अवशेषों वनों एवं वन्य जीवों तथा जनता के लिये महत्त्वपूर्ण अन्य मामलों से संबंधित याचिकाऐं।
9. दंगा पीड़ितों द्वारा दायर याचिकाऐं।
10. पारिवारिक पेन्शन से सम्बन्धित मामले आदि।

जनहित याचिका के रुप में दायर सभी सामान्य पत्रों की सर्वप्रथम जनहित शाखा द्वारा जाँच की जाती है। जाँच के उपरान्त उपरोक्त वर्गों के अन्तर्गत उल्लेखित याचिकाओं को ही सुनवाई हेतु न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। अन्य याचिकाएँ जिन्हें जनहित को प्रोत्साहन देने में असंगत पाया जाता है, इस वर्ग से बाहर कर दी जाती हैं।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ ऐसे क्षेत्रों की पहचान भी की गयी है जिन्हें निजी प्रकृति के मामले मानकर जनहित याचिकाओं के रुप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। ये क्षेत्र हैं –

1. भू–स्वामी और किराएदारों के बीच विवाद।
2. नौकरी संबंधी तथा पेन्शन एवं सेवोपहार से संबंधित मामले।
3. केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय संस्थाओं से संबंधित शिकायतें।
4. मेडिकल, इंजीनियरिंग तथा अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में दाखिले से संबंधित मामले।
5. उच्च न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित मुकदमों की त्वरित सुनवाई से संबंधित मामले, इत्यादि।

जनहित याचिका एवं हस्तक्षेप करने का अधिकार

'लोकस स्टैन्डी' मूलतः लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है – खड़े होने का स्थान। वर्तमान कानूनी परिप्रेक्ष्य में लोकस स्टैन्डी का आशय अदालत के समक्ष कार्यवाही हेतु खड़े होने से लगाया जा सकता है। यह किसी मामले के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति अथवा पक्ष द्वारा अदालत के निर्णयों के सम्बन्ध में न्यायिक प्रक्रिया को चुनौती देने की क्षमता है। लोकस स्टैन्डी अथवा सुने जाने का अधिकार प्रभावित पक्ष द्वारा उचित सम्बन्ध दर्शाते हुए यह प्रमाणित करने का अधिकार है कि कानून द्वारा उसकी क्षति हुई है अथवा सम्बन्धित मामले में अपनी संलिप्तता का विरोध करने के लिये वह इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

लेस्ली स्टेइन के अनुसार ''किसी व्यक्ति अथवा परिस्थिति विशेष के सन्दर्भ में 'सुने जाने के अधिकार' को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं और साथ ही कानूनी तौर पर खड़े होने के अधिकार का विस्तार और संकुचन अदालत के स्तर पर भी निर्भर करता है। एक सामान्य नियम के रुप में उस व्यक्ति को सुने जाने का अधिकार प्राप्त होता है, जो उस परिस्थिति विशेष में यह दर्शाने में सक्षम है कि संबंधित मामला उसके लिये हानिकारक परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और वह कार्रवाई जिसका अदालत द्वारा बीड़ा उठाया गया है, उस क्षति की भरपाई कर सकती है।''

लॉर्ड डेनिंग के अनुसार ''जैसा कि देखा गया है अदालत निश्चित रुप से उस मात्र एक दखलअंदाजी को नहीं सुनेगी जो अदालत से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है और उसकी कानूनी प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है परन्तु अदालत उसको सुनेगी जिसके हित उन कृत्यों द्वारा प्रभावित हुए हैं जिनका आदेश उसके द्वारा दिया गया था। उदाहरण के लिये यदि एक नागरिक कानून को चुनौती देना चाहता है तो सबसे पहले यह आवश्यक है कि वह प्रमाणित करे कि कानून के आदेशों से वह हानिकारक परिस्थितियों का सामना कर रहा है। इसका मतलब है कि लोग कानून को मुकदमे के केवल सिद्धान्तों के आधार पर चुनौती नहीं दे सकते। उस व्यक्ति विशेष का जब अदालत में मुकदमा दर्ज होता है तब यह प्रमाणित करने में भी वह सक्षम होना चाहिए कि उसका हित उक्त कानून से प्रभावित हो रहा है। इसे सामान्यतः 'लोकस स्टैन्डी' के रुप से जाना जाता है।''

यूरोपीय परिषद् ने सर्वप्रथम 1945 में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की जिसके समक्ष किसी व्यक्ति को स्वतः खड़े होने अथवा सुने जाने का अधिकार प्राप्त हुआ। उसके उपरान्त कनाडा, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों ने अपनी न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रणाली को विकसित किया।

हस्तक्षेप करने का अधिकार कानूनी भाषा में तीन प्रकार से अस्तित्व में है –

1. किसी पक्ष को संविधान द्वारा लागू अधिनियम अथवा मुकदमे की कार्रवाई से प्रत्यक्ष रुप से हानि पहुँची है। ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति हानि की भरपाई के लिये अदालत जाता है।
2. किसी पक्ष को अदालत के फैसले अथवा कार्रवाई द्वारा प्रत्यक्ष रुप से हानि नहीं पहुँची है लेकिन जिस पक्ष को हानि पहुँची है उस पक्ष के साथ पूछताछ करने वाले पक्ष के तर्कपूर्ण सम्बन्ध हैं।
3. किसी पक्ष को अविवेचित रुप से कानून की कार्यवाही द्वारा सुने जाने का अधिकार प्रदान किया गया है।

1980 के दशक से पूर्व केवल व्यथित पक्ष ही व्यक्तिगत रुप से अपने साथ हुई क्षति के लिये न्यायालय में अभ्यावेदन कर सकता था। कोई अन्य व्यक्ति जो मामले में प्रत्यक्ष रुप से सम्मिलित नहीं है व्यथित पक्ष की मदद करने में सक्षम नहीं था। ऐसे में पिछड़े वर्ग जो अपने इस अधिकार से अनभिज्ञ थे स्वयं को अलाभकारी स्थिति में पाते थे। लेकिन 1980 के दशक में न्यायमूर्ति पी0एन0 भगवती ने इसे सभी लोगों के लिये सक्षम बनाया। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित

किया सामाजिक या लोकहित के मामले में कोई भी व्यक्ति अभ्यावेदन कर सकता है। इसे 'सुने जाने के अधिकार' का विस्तार किया जाना कहा जाता है। (बसु : 163) जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायालय ने 'व्यथित व्यक्ति' की संकल्पना का विस्तार किया और जनहित के मामलों पर भी इसे लागू किया गया। वर्तमान में दूसरा पक्ष जो प्रत्यक्ष रुप से मामले से प्रभावित नहीं है, सार्वजनिक हित के लिये 'हस्तक्षेप करने के अधिकार' का प्रयोग कर सकता है। 'सुने जाने का अधिकार' जनहित याचिकाओं के साथ अभिन्न रुप से जुड़ा हुआ है।

प्रमुख संवैधानिक प्रावधान

जनहित याचिकाओं का विचार मुख्य रुप से सामाजिक, आर्थिक न्याय पर आधारित है। नीति निर्माताओं ने स्वतन्त्रता पूर्व ही देश की स्थितियों का आंकलन कर लिया था, इसलिये संविधान निर्माण के दौरान ही समाज में व्याप्त पिछड़ेपन को दूर करने के लिये विभिन्न प्रावधान संविधान के अन्तर्गत शामिल कर दिये गये थे। कुछ प्रावधान ऐसे भी हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार समय–समय पर विभिन्न संशोधनों के माध्यम से जोड़ा गया है। प्रमुख संवैधानिक विधियाँ जो सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने एवं लोगों के लिये न्यायपूर्ण परिस्थितियाँ उपलब्ध कराने की गारंटी देते हैं, इस प्रकार हैं –

संविधान की प्रस्तावना

सामान्यतया जनहित याचिकाओं को उदारवादी लोकतंत्र की उपज माना जाता है लेकिन इनका मूल विचार (सामाजिक, आर्थिक समानता एवं न्याय) इन्हें समाजवाद के ज्यादा करीब लाता है। संविधान की प्रस्तावना में भारत को 'समाजवादी लोकतन्त्र' के रुप में परिभाषित किया गया है। इसके अतिरिक्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय एवं अवसर की समानता उपलब्ध कराया जाना संविधान का उद्‌देश्य बताया गया है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक तत्वों वाले भाग के अन्तर्गत प्रावधान किये गए हैं। सामाजिक और आर्थिक न्याय का मिलाजुला रुप 'अनुपाती न्याय' को परिलक्षित करता है (लक्ष्मीकांत, 4.3)।

मौलिक अधिकार

अनुच्छेद–14 के अन्तर्गत कहा गया है कि राज्य भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता या विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। 'व्यक्ति' शब्द में विधिक व्यक्ति अर्थात संवैधानिक निगम, कंपनियाँ, पंजीकृत समितियाँ इत्यादि शामिल हैं। 'विधि के समक्ष समानता' का अर्थ है साधारण विधि एवं न्यायालय के तहत सभी व्यक्तियों के लिये समान व्यवहार एवं किसी व्यक्ति विशेष के पक्ष में विशेषाधिकारों का अभाव। कोई व्यक्ति (अमीर–गरीब, ऊँचा–नीचा, अधिकारी–गैर अधिकारी) विधि के ऊपर नहीं है। 'विधि के समान संरक्षण' से आशय है विधियों द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकारों एवं आध्यारोपित दायित्वों दोनों में समान परिस्थितियों के अनुसार समान व्यवहार (लक्ष्मीकांत 7.5)। विधि के समान संरक्षण का विचार उस स्थिति में विशेषाधिकारों को 'असमानता' नहीं मानता जिसमें कोई व्यक्ति अथवा वर्ग अतार्किक भेदभावों या अन्य किसी प्रकार की असक्षमता के कारण लंबे समय से पिछड़ेपन एवं लाचारी का जीवन व्यतीत कर रहा है।

अनुच्छेद–16 उपबन्ध करता है कि राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिये अवसर की समानता होगी। इसे अनुच्छेद–14 का पूरक माना जा सकता है। अवसर की समानता से आशय केवल विधिक समानता से नहीं है बल्कि यदि कोई व्यक्ति अथवा वर्ग किसी निर्धारित क्षेत्र में पर्याप्त योग्यताऐं रखता है तो उसे समान अवसर उपलब्ध करवाये जाने से है। अवसर की समानता का तात्पर्य है समान परिस्थितियों में रह रहे लोगों के लिये समान अवसर न कि भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में रह रहे लोगों के लिये समान अवसर। राज्य को इस बात की अनुमति है कि वह सामाजिक एवं शैक्षणिक रुप से पिछड़े वर्गों के विकास के लिये कोई उपबंध करे। इसी आधार पर वर्ष 1979 में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया। इसकी सिफारिशों के आधार पर पिछड़े वर्ग के लोगों के लिये सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गयी।

अनुच्छेद–32 व्यक्ति को उसके मौलिक अधिकारों का हनन होने पर बिना अपीली प्रक्रिया के उच्चतम न्यायालय में जा सकने का अधिकार देता है। यह अनुच्छेद उपबंध करता है कि उच्चतम न्यायालय को किसी भी मूल अधिकार के संबंध में निर्देश या आदेश जारी करने का अधिकार होगा। न्यायालय को पाँच प्रकार की रिट जारी करने का अधिकार है – बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण एवं अधिकार पृच्छा (लक्ष्मीकांत 7.18)। इस अनुच्छेद के तहत संसद किसी अन्य न्यायालय को भी इन रिटों को जारी करने का अधिकार दे सकती है। अनुच्छेद 226 के तहत सभी उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने की शक्ति प्रदान की गयी है। उच्चतम न्यायालय का रिट संबंधी न्यायिक क्षेत्र उच्च न्यायालय से इन रुप में भिन्न है कि जहाँ उच्चतम न्यायालय केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन को लेकर रिट जारी कर सकता है वहीं उच्च न्यायालय किसी अन्य

उद्देश्य जैसे, गैर मूल संवैधानिक अधिकार, असंवैधानिक अधिकार, लौकिक अधिकार के लिये भी रिट जारी कर सकता है।

जनहित याचिकाएं अनुच्छेद–32 एवं 226 में वर्णित रिटों का ही एक प्रकार है। उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के विभिन्न अधिनिर्णयों में जनहित याचिकाओं को सामान्य रिटों के समकक्ष माना गया है।

नीति–निर्देशक तत्व

संविधान का अनुच्छेद उपबंध करता है कि यद्यपि राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की प्रकृति गैर न्यायिक है फिर भी संवैधानिक मान्यता के विवरण में न्यायालय इन्हें देखेगा। राज्य किसी भी कानून को क्रियान्वित करते समय इन तत्वों को ध्यान में रखेगा।

अनुच्छेद–38 राज्य को लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिये सामाजिक व्यवस्था बनाने हेतु निर्देशित करता है। इसके अनुसार राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की सभी संस्थाएं शामिल हैं, को अनुप्रमाणिक करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। साथ ही यह अनुच्छेद उपबन्ध करता है राज्य विशेष रुप से आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि लोगों के समूहों के बीच भी अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद–39(क) नागरिकों के लिये समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का उपबन्ध करता है। संविधान का यह अनुच्छेद मूल रुप से जनहित याचिकाओं के उदय का प्रेरणास्रोत है। इसके अनुसार राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तन्त्र इस प्रकार काम करेगा कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो। राज्य विशेष रुप से यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने से वंचित न रह जाए उपर्युक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

संघ की न्यायपालिका

संविधान के भाग–5, अध्याय–4 के अन्तर्गत अनुच्छेद–124–147 तक संघ की न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद–139 संसद के माध्यम से उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद–32 में वर्णित प्रयोजनों के अन्तर्गत पाँच प्रकार की रिटों को निकालने की शक्ति प्रदान करता है।

राज्यों के उच्च न्यायालय

संविधान के भाग–6, अध्याय–5 के अन्तर्गत अनुच्छेद–214–232 तक राज्यों के उच्च न्यायालयों के कार्यक्षेत्र की चर्चा की गयी है। अनुच्छेद–226 के अनुसार अनुच्छेद–32 में किसी बात के होते हुए भी उच्च न्यायालयों को भाग–3 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिये और किसी अन्य प्रयोजन के लिये पाँच प्रकार की रिटों को निकालने की शक्ति होगी।

कुछ वर्गों के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध

संविधान के भाग–16 के अन्तर्गत अनुच्छेद–330–342 तक कुछ वर्गों के लिये कुछ विशिष्ट रियायतों की व्यवस्था की चर्चा की गयी है। अनुच्छेद–340 पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिये आयोग की नियुक्ति का प्रावधान करता है। यह कहता है कि राष्ट्रपति भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं और जिन कठिनाईयों को वे झेल रहे हैं उनके अन्वेषण के लिये और उनकी दशा को सुधारने के लिये एक आयोग नियुक्त करेगा।

निष्कर्ष

जनहित याचिकाओं ने पिछले 40 वर्षों में भारत के न्यायिक परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है। जनहित याचिकाओं के माध्यम से ही अप्रतिनिधिक पिछड़े वर्गो तक न्याय की पहुँच संभव हो पायी है। देश के विधि विशेषज्ञों एवं समाज सेवकों के सामूहिक प्रयास ने इस संकल्पना को देश के ढाँचे के अनुरुप विकसित करने में अतुलनीय योगदान दिया है। जनहित याचिकाओं ने न केवल मौलिक अधिकारों बल्कि मानव अधिकारों के संरक्षण के कर्त्तव्य को ध्यान में रखते हुए भारत की न्याय प्रक्रिया को और अधिक विस्तृत किया है।

जनहित याचिकाओं के अस्तित्व में आने से पूर्व 'सुन जाने का अधिकार' केवल 'व्यथित पक्ष' को ही प्राप्त था। परन्तु अब इसे दूसरे पक्ष के हितों की रक्षा के लिये भी प्रयोग किया जा सकता है। इससे 'सुने जाने के अधिकार' का विस्तार हुआ है। जनहित याचिकाएं समान हित रखने वाले अप्रतिनिधिक वर्गों के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करती हैं। वे वर्ग जो अत्याचारों के खिलाफ व्यक्तिगत रुप से न्यायिक संरक्षण प्राप्त करने में अक्षम थे, जनहित याचिकाओं के माध्यम से उन्हें एक संगठन के रुप में विकसित होने और सामान्य समस्याओं के लिये सामूहिक रुप से आवाज उठाने का अवसर मिला है। महिलाओं के होने वाले अपराधों को रोकने के लिये जनहित याचिकाओं के माध्यम से समय–समय पर कानूनों का निर्माण हुआ है। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य, 1992 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने काम के स्थान पर महिलाओं के शोषण को

रोकने और लैंगिक समानता के संरक्षण के आदेश दिये। इस मामले ने भारत में महिला अधिकारों के प्रवर्तन के लिये क्रान्ति ला दी।

इसी तरह एम0सी0 मेहता बनाम भारत संघ, 1988 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदूषण कारक कारखानों को आदेश दिये कि वे गंगा नदी में गन्दगी गिरने से रोकने के लिये मलजल उपचार संयंत्रों का निर्माण करें अन्यथा कारखानों को बन्द कर दिया जायेगा। परिणामस्वरुप आठ राज्यों ने, जो गंगा नदी के तट पर बसे हुए हैं कारखानों की गन्दगी को नदी में गिराना बन्द कर दिया।

जनहित याचिकाओं ने न्याय के 'यूटोपिया' को व्यवहारिक धरातल पर उतारने का प्रयास किया है। यह न्याय का सबसे आदर्श, नैतिक, व्यवहारिक और वैज्ञानिक रुप है। बिना धन खर्च किये, बिना अदालतों के चक्कर लगाए न्याय तक पहुँच गरीब, पिछड़े वर्गों के लिये एक सपने के सच होने जैसा है। भारत जैसे विकासशील देशों के लिये जहाँ कुल जनसंख्या का केवल 74.4% भाग ही साक्षर है, जनहित याचिकाओं का विशेष महत्त्व है।

पिछले वर्षो में जनहित याचिकाओं ने भारत के विशाल जनपुन्ज को लाभान्वित किया है। धीरे–धीरे न्याय व्यवस्था पर आम नागरिकों का विश्वास बढ़ रहा है। यदि सार्वजनिक न्याय, सामूहिक सुरक्षा के नाम पर धनी और चतुर लोगों द्वारा जनहित याचिकाओं के माध्यम से निजी हितों का पक्षपोषण न किया जाए तथा आम नागरिकों द्वारा अप्रासंगिक मुद्दों को जनहित के मुद्दों के रुप में प्रदर्शित करके न्यायालयों पर मुकदमों की सुनवाई का अतिरिक्त बोझ न बढ़ाया जाए तो निश्चित रुप से जनहित याचिकाएं महान न्यायिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम होंगी।

सन्दर्भ सूची

पुस्तकें

Aggarwal, Om Prakash. 1956. Fundamental Rights and Constitutional Remedies. Vol II, New Delhi : Metorpolitan Book Co. Ltd.

Ahuja, Sangeeta. 1997. Public Law and Justice: A Casebook of Public Interest Litigation. Vol I, New Delhi: Orient Longman Limited.

Dr. Bhatia, K.L., Prof Wolfrum, Rudiger. 1997. Judicial Review and Judicial Activism. New Delhi: Deep and Deep Publication.

Justice Desai, Ashok A. 2000. Justicing the People. Allahabad: Modern Law House.

Gupta, Subhash Chandra. 1995. Supreme Court of India: An Instrument of Socio-Legal Advancement. New Delhi: Deep and Deep Publication.

Iyer, V.R. Krishna. 1992. Justice of Crossroads. New Delhi: Deep and Deep Publiacation.

Lal, Hardawari. Myth and Law of Parliamentory Priviledges. New Delhi: Allied Publishers.

Mridual, Marudhar. 1986. Public Interest Litigation A Profile. Jaipur: Bharat Law House.

Pacharui. P.S. 1971. The Law of Parliamentory Priviledges in U.K. and in India. Bombay: N.M. Tripathi Pvt. Ltd.

Dr. Singh, S.N., ed. 1990. Law and Social Change. New Delhi: P.G. Krishna Memorial Foundation.

राय, अरूणा. 2009. भारत में जनहित याचिकाएँ एवं मानव अधिकार. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन।

लक्ष्मीकान्त, एम0. 2015. भारत की राजव्यवस्था. नई दिल्ली : मैक–ग्रो हिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड।

लेख –

Baxi, Upendra. 1969. “Directive Principles and Sociology of Indian Law.” Journal of the Indian Law Institute. Vol 11: PP 245-272.

Cumingham, Clark D. 1987. “Public Interest Litigation in Indian Supreme Court: A Study of the light of American Experience.” Journal of Indian Law Institute. Vol. 29: PP 494-523.

Hollay, Zachory. 2012. “Public Interest Litigation in India as a Paradigm for Developing Nations.” Indian Journal of Global Legal Studies, Vol. 19:PP 555-573.

Sathe, S.P. “Public Participation in Judicial Process: New Trends in Law of Locus Standi with Special Reference to Administration Laws.” Journal of Indian Law Institute Vol. 26:PP 1-12.

Senger, D.S. 2003. “PIL to ensure that Institution behave lawfully: Public Access to Environmental Justice in India.” Journal of Indian Law Institute. Vol. 45 PP 62-79.